



श्री स्वामिनारायणका विशिष्टाद्वैत सिद्धांत और ईश्वरवाद : रामानुजाचार्यके चिंतनसे भिन्नता और पाश्चात्य ईश्वरवादी सिद्धांतोंसे तुलना

डॉ. धृति जयेन्द्रकुमार याज्ञिक
असोसोसियेट प्रोफेसर, तत्त्वज्ञान विभाग
गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद

इस पत्रमें भारतीय दर्शनके विद्वान लेखकों जैसे, हिरियण्णा, दासगुप्ता, राधाकृष्णन, जदुनाथ सिन्हा इत्यादिके लेखनों तथा कई पाश्चात्य ईश्वरवादी लेखकोंके पुस्तकोंकी सहाय ली है। इस पत्रको लिखनेमें मुख्यरूपसे डॉ. जे. ए. याज्ञिकके पुस्तक, *The Philosophy of Sri Svaminarayanism* में प्रदर्शित रामानुजाचार्यके विचारसे श्री स्वामिनारायणके विचारोंकी भिन्नताका सारभूत सिद्धांत प्रस्तुत किया है। श्री स्वामिनारायणके विचारोंके लिए उनके वचनामृत और शिक्षापत्रीमें दिये गये विचारो जो डॉ. याज्ञिकने उनके पुस्तकमें लिए हैं उसे उनके पुस्तकके प्रकरणका क्रमांक और सेक्शन प्रस्तुत करके दर्शाया गया है। प्रस्तुत लेख मुख्यतः दो विभागमें विभाजित है, जिसमेंसे प्रथम विभागमें रामानुजाचार्यके विशिष्टाद्वैतके मुख्य सिद्धांतोंसे श्री स्वामिनारायणके विशिष्टाद्वैतके मुख्य सिद्धांतोंका मुख्य भेद और साम्यता दर्शाया है और दूसरे विभागमें पाश्चात्य ईश्वरवादी सिद्धांत जैसे, डीईडम, पैनथीईडम और थीईडम और पैनएनथीईडमके सिद्धांतोंसे श्री स्वामिनारायणके ईश्वरवादी सिद्धांतोंकी तुलना की गई है।

श्री स्वामिनारायणने अपनी दार्शनिक स्थितिको विशिष्टाद्वैती बताया है। (मतं विशिष्टाद्वैतं मे। शिक्षापत्री, १२१) श्री स्वामिनारायणने पांच तत्त्वोंको स्वीकारा है - जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्मा और परब्रह्मा। ये पांचो तत्त्वोंमें सिर्फ परब्रह्मा ही ऐसे हैं जो स्वयं विद्यमान है और बाकीके चार परब्रह्माके माध्यमसे या उनके कारण अस्तित्वमान है। इस तरह, परब्रह्मा ही जो कुछ है उसका तात्त्विक आधार है। वो हकीकत है की श्री स्वामिनारायणने इन चारोंकी तात्त्विक निर्भरता शरीर-शरीरी संबंधको लेके समजाइ है। और जैसेकि पी.एन.श्रीनिवासाचारिने यथार्थ कहा है कि ब्रह्माका शरीरीके रूपमें मानना ही विशिष्टाद्वैतको प्रस्तुत करता है। (पी.एन.श्रीनिवासाचारि, पृ.८८) इस तरह, शरीरात्मभाव, जो विशिष्टाद्वैतका वैशिष्ट्य है, उसे श्री स्वामिनारायणने स्वीकार किया है। इसलिए ऐसे कह सकते हैं कि श्री स्वामिनारायण विशिष्टाद्वैती हैं।

दुसरा भी प्रभावक कारण है, जिसको लेके हम श्री स्वामिनारायणको विशिष्टाद्वैती कह सकते हैं और वो है कि श्री स्वामिनारायणके अनुसार जो कुछ है उसका परब्रह्मा ही एक और मात्र एक स्वयं विद्यमान तात्त्विक आधार है। श्री स्वामिनारायण अनुसार परब्रह्मा सिर्फ स्वयं विद्यमान ही नहीं, अपितु, ऐसे हैं कि जीव, ईश्वर या अक्षरब्रह्मा कभी भी परब्रह्माकी सी महत्ता, शक्ति या प्रभुत्व पा नहीं सकते हैं। इस तरह, श्री स्वामिनारायण एक ही स्वयं विद्यमान परम तत्त्वको मानते हैं (अद्वैत) और वह विशिष्ट हैं। अतः यहाँ विशिष्टाद्वैत हैं।

श्री स्वामिनारायणके चिंतनको 'कोक्रिट मोनीडम' भी कह सकते हैं क्योंकि जैसे वर्जिलियस फर्म कहते हैं कि कोक्रिट का मतलब है वो जो विशिष्ट हैं और व्यक्तिगत हैं। (रूनस एन्ड अन्य, पृ.६१) श्री स्वामिनारायणका स्वयं विद्यमान अंतिम तत्त्व विशिष्ट और विलक्षण तत्त्व हैं और इसलिए इस अर्थमें उनकी तात्त्विक अवस्था 'कोक्रिट मोनीडम' हैं। यह नोंधनीय है कि हेगलके कोक्रिट मोनीडमसे श्री स्वामिनारायणका कोक्रिट मोनीडम अलग हैं। क्योंकि हेगलके अनुसार, अनेकमें जो एक हैं, वो अंतिम सिद्धांत हैं, जबकि श्री स्वामिनारायणके अनुसार, अंतिम एक तत्त्व अनेकमें तो है ही, उसके अतिरिक्त भी है। इसलिए वह सिर्फ अंतर्निहित ही नहीं, वल्कि वास्तवमें पर तत्त्व हैं।

श्री स्वामिनारायणके विशिष्टाद्वैतका यह अर्थघटन उनके श्रुतिवाक्य एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्मा के समाधानसे होता है। उनके मतानुसार, यह श्रुतिवाक्य परब्रह्माके वैशिष्ट्यको दर्शाता है, नहीं कि इसके अतिरिक्त अन्य तत्त्वोंके निषेधको बताता है। अतः परब्रह्माके जैसा अन्य कोई तत्त्व नहीं है, इसलिए वो एक और मात्र एक कहा जाता है।

रामानुजाचार्य और स्वामिनारायणके मतकी भिन्नता :



रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतके पुरस्कर्ता है और श्री स्वामिनारायणने खुदने कहा है कि मेरा मत विशिष्टाद्वैत है, फिर भी कुछ मतमें श्री स्वामिनारायण रामानुजाचार्यसे भिन्न मतको मानते हैं। तत्त्वमीमांसकीय दृष्टिसे कुछ मतका भेद इस प्रकार है :

(१) प्रथम तो स्पष्ट दिखनेवाली भिन्नता तत्त्वोंमें मान्यता है। ये सर्वविदित है कि रामानुजाचार्य तत्त्वमीमांसकीय दृष्टिसे तीन तत्त्वोंमें मानते हैं – चित्, अचित् और ईश्वर, जबकि श्री स्वामिनारायण पांच तत्त्वों मानते हैं – परब्रह्मा, अक्षरब्रह्मा, ईश्वर, जीव और माया। ये सत्य है कि अक्षरब्रह्मा, ईश्वर और जीव सब चेतन है जो रामानुजाचार्यके चित् में समाविष्ट है। रामानुजाचार्य ईश्वर और जीवमें भिन्नता मानते हुए दोनोंको आध्यात्मिक तत्त्व मानते हैं, वैसेही श्री स्वामिनारायण अक्षरब्रह्मा, ईश्वर और जीवको अलग अलग तत्त्वों मानते हैं।

(२) दुसरा भेद यह है कि रामानुजाचार्य और श्री स्वामिनारायण दोनों परब्रह्मा और अन्य तत्त्वोंके बीच शरीर-शरीरी संबंधको मानते हैं, परंतु, शरीरीकी संकल्पनाको लेके दोनोंमें भिन्नता है। रामानुजाचार्यने शरीरकी व्याख्या इस प्रकार की है :

“शरीर ऐसा द्रव्य है जिसे जीव अपने हेतुके लिए पूर्णतया नियंत्रण करता है और जो जीवके संपूर्ण अधीन है। इसलिए, इस अर्थमें तमाम संवेदनवाले तत्त्वों (शरीरों) मिलके सर्वोच्च पुरुषके शरीर बनते हैं क्योंकि वो पुरुषके हेतुके लिए उनके द्वारा संपूर्णतया नियंत्रित और अधीन हैं।” (रामानुजाचार्य, (अनु. - जी. थीबो), पृ. ४२४)

यहां यह स्पष्ट होता है कि परम पुरुष अपने प्रयोजनकी सिद्धिके लिए भौतिक तत्त्वों और जीवोंका उपयोग करते हैं। राधाक्रिष्णनके मतसे ईश्वर ही सब कुछ है और जीव और शरीर ईश्वरके प्रयोजनके लिये उपयुक्त होनेवाले साधनमात्र है। (एस. राधाक्रिष्णन, पृ. ७१६-७१७) यह हकीकत न केवल ईश्वरकी पूर्णता, परत्व और स्वतंत्रताके विरुद्धकी बात बनती है, परंतु, साथ ही साथ जीवके खुदके विशिष्ट प्रयोजनका भी निषेध करती है।

इसलिए यह सिद्ध होता है कि रामानुजाचार्यकी शरीरीकी संकल्पना योग्य नहीं है, जबकी श्री स्वामिनारायणके शरीरीकी संकल्पनामें यह मुश्किल नहीं है। क्योंकि, श्री स्वामिनारायणके मतानुसार, परब्रह्मा अन्य चारों - अक्षरब्रह्मा, ईश्वर, जीव और माया - के शरीरी है। उनके मतमें, यही चारों तत्त्वों (१) ईश्वर (परब्रह्मा)से व्याप्त है, (२) ईश्वरके अधीन है और (३) ईश्वरकी शक्तिके बीना कुछ भी करनेमें असमर्थ है। श्री स्वामिनारायणके मतमें ईश्वर कभी खुदके प्रयोजनके लिए सान्त तत्त्वोंका आश्रय नहीं करते हैं, परंतु, ये तत्त्वोंके अपने प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिए मदद करते हैं। इससे ईश्वरकी पूर्णता और अन्य तत्त्वोंकी महत्ता बनी रहती है।

(३) तीसरा, रामानुजाचार्यका तत्त्वज्ञान विशिष्टाद्वैत हैं, क्योंकि इनके मतमें एक अंतिम तत्त्व हैं और वह जगत और जीवोंसे सम्पन्न हैं। (चिदचित्तविशिष्ट ईश्वरः) रामानुजाचार्यके मतमें, “जगतकी सभी वस्तुएँ परब्रह्माके विधेय या पर्याय हैं, और इसलिए, परब्रह्मा अकेले अस्तित्वमान हैं, बाकी सभीको विधेय बनाके।” (“All things thus are predicative to, or modes of, Paramaurusha; hence Paramapurusha alone exists, adjectivated by everything else.” (Ramanujacharya (Govindacharys’s Translation) p.236))

इसका स्पष्ट और सहज फलितार्थ यह है कि ईश्वरके, जगत और जीवों अनिवार्य गुण है। ब्रह्माकी कारणावस्था और कार्यावस्थाको स्पष्ट करते हुए रामानुजाचार्य कहते हैं कि, “परब्रह्माका शरीर कभी चित् और अचित्के सूक्ष्म रूपसे बनता है, जहां वो सूक्ष्मताके कारण ब्रह्मा और उनके शरीरमें कोई भेद नहीं दिखता। यह ब्रह्माकी कारणावस्था है। और कभी ब्रह्माका शरीर चित् और अचित्के स्थूल रूपसे बनता है, जहां विविध नामरूप है, वह ब्रह्माकी कार्यावस्था है और यहां जगत उनके कारण - परब्रह्मासे भिन्न प्रतीत हो सकता है।” (“The body of this Brahman is sometimes constituted by sentient and non-sentient beings in their subtle state, when, just owing to that subtle state, they are incapable of being designated as apart from Brahman whose body they form : Brahman is then in its so-called casual condition. At other times the body of Brahman is constituted by all sentient and non-sentient beings in their gross, manifest state, owing to which they admit of being thought and spoken of as having distinct names and forms : Brahman then is in its ‘effected’ state. The effect, i.e. the world is thus seen to be non-different from the cause, i.e. the Highest Brahman. (op. cit. pp. 458-459))

उपर्युक्त ब्रह्माकी कारणावस्था और कार्यावस्थाके विवरणसे स्पष्ट होता है कि रामानुजाचार्य चित् और अचित्को ईश्वरके स्वरूपके अनिवार्य घटक ही मानते हैं। दासगुप्ताने स्पष्ट किया है कि, “ईश्वरके चित् और अचित् दो शरीरके भागरूप हमेशा अस्तित्वमान है, और ईश्वरका और कोई भी भाग इससे ज्यादा सत्य और अंतिम नहीं है।” (“The differentiation of parts of God, as matter and souls, always existed and there is no part of Him which is truer and more ultimate than this.” (S. Dasgupta, p.200))



इस तरह, हम ब्रह्माको उनके शरीरके संदर्भके बिना सोच नहीं सकते हैं, क्योंकि, ब्रह्माकी अवस्था उनके शरीरकी अवस्थासे निश्चित होती है। निनिआन स्मार्टने सही कहा है कि, “कोई कह सकता है कि रामानुजके मतमें ब्रह्माको हमेशा एक दृष्टिसे अनुभव होता है, और शरीर ही यह दृष्टि प्रदान करती है।” (“One might say, on Ramanujist account that a self (Brahman) always has experience from a certain point of view and it is the body which provides this point of view.” (Ninian Smart, p.108))

इसका मतलब ये हुआ कि ब्रह्माके वास्तविक परात्पर रूपके लिए कोई जगह नहीं रही। यह मुश्किल राधाक्रिश्ननके द्वारा बहुत अच्छी तरह दर्शाई गई है, “यदि परब्रह्मा परिवर्तनहीन परात्पर सत्ता है, तो प्रश्न उठता है कि ऐसा परात्पर तत्त्व, जिसे कोई भूतकाल नहीं है, और जिसने कभी कालकी सीमामें रहके उत्क्रांति नहीं की है, वह तत्त्व परिवर्तनको कैसे पाता है ? ... उससे हमें परात्पर ब्रह्मा और जो कुछ उनका शरीर बनता है उनके बीचका संबंध बुद्धिगम्य नहीं बनता है।” (“If the Absolute is supposed to be a transcendent changeless existence, it is a problem how such an Absolute, which has no history, includes the time process and evolution of the world. Unless Ramanujacharya is willing to explain away the immutable perfection of the Absolute, and substitute for it a perpetually changing process, a sort of progressing perfection, he cannot give us any satisfactory explanation of the relation of the soul of the Absolute to its body.” (S. Radhakrishnan, op. cit., p.716))

यहां रामानुजाचार्यसे अलग, श्री स्वामिनारायणके तत्त्वज्ञानमें ब्रह्मांडका तात्त्विक अधिष्ठान स्वयं सत् तत्त्व एक और मात्र एक हैं। इस तरह, श्री स्वामिनारायणके विशिष्टाद्वैतमें जगत और जीवोंको ईश्वरका शरीर नहीं माना है। उपरसे, श्री स्वामिनारायण तो ईश्वरके परात्पर रूपको ज्यादा महत्व देते हैं। क्योंकि उन्होंने कहा है कि भगवान अपनी अंतर्गामी शक्तिसे प्रत्येक भौतिक और आध्यात्मिक तत्त्वोंमें सर्वव्यापक होनेके बावजूद, मूलभूत रूपसे वो जगतके कार्यों से पर है। उनके उपर सर्व निर्भर है, पर वो किसी पर निर्भर नहीं है। श्री स्वामिनारायणके तत्त्वज्ञानमें ईश्वरका दिव्य परत्व और सार्वभौमत्व स्पष्ट है, उस कारणसे ईश्वरके लिए अक्षरब्रह्मा या मुक्त जीवों से संबंध रखना विलकूल जरूरी नहीं है। (याज्ञिक जे.ए., प्र. ६, सेक्शन ६)

इस तरह, रामानुजाचार्यके सिद्धांतसे स्पष्ट फलित होता है कि शरीर और शरीरी परस्पर अधीन है (अपृथक्सिद्धि), जबकि, श्री स्वामिनारायणके सिद्धांतमें शरीरका शरीरीके प्रति अधीनता एकतरफा है। शरीरकी अधीनता जिन शरीरीके प्रति है वह शरीरी मूलभूत रूपसे परात्पर और संपूर्ण स्वतंत्र तत्त्व है।

ईश्वरकी प्रधानता, श्रेष्ठत्व, परात्परता और स्वतंत्रताको बचानेके लिए माध्वाचार्यने शरीर-शरीरीका रूप छोड़के बिम्ब-प्रतिबिम्बभावको स्वीकार किया है। श्री स्वामिनारायणकी दृष्टिसे सोचे तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि इस मतमें ईश्वरसे अतिरिक्त अन्य तत्त्वों ईश्वरके मात्र प्रतिबिम्ब हैं, आकारमात्र हैं। श्री स्वामिनारायणके शरीर और शरीरी आत्माकी संकल्पना उचित है क्योंकि इसमें ईश्वरके अतिरिक्त अन्य तत्त्वोंकी वास्तविकता और उनका ईश्वरके प्रति अधीनता मानी गई है। रामानुजाचार्यमें यह आपत्ति है कि उनके शरीर-शरीरी रूपकके अर्थघटनके अनुसार दोनों परस्पर अधीन है। यह तार्किक नहीं है क्योंकि, यह स्पष्ट है कि शरीरका अस्तित्व और प्रवृत्ति शरीरी आत्माके उपर निर्भर है, पर आत्मा कभी शरीरके उपर निर्भर नहीं है। यही तो कारण है कि शरीरके नाश होनेसे शरीरी आत्माका नाश नहीं होता। इस संदर्भमें डॉ. याज्ञिक यथार्थ कहते हैं कि, “Thus, with the help of this metaphor, Swaminarianism teaches that while all-that-there-is depend on God, He Himself depends on none.” (Yajnik J.A., p.127)

(४) रामानुजाचार्य और श्री स्वामिनारायणके सिद्धांतमें चौथा भेद यह है कि रामानुजाचार्य ब्रह्मा-परिणामवादमें मानते हैं, जबकि श्री स्वामिनारायण उसका संपूर्ण निषेध करते हैं। रामानुजाचार्यके मतमें, “ब्रह्मा अपने अति सूक्ष्म शरीररूपमें होते हुए यह तय करते हैं कि अब मैं पहलेकी तरह फिरसे नाम-रूपसे अलग दीखनेवाला चित् और अचित्का शरीर धारण करता हूं, और इसतरह, वो इस शरीररूपमें परिणमते (परिणमयति) हैं।” (“Brahman invested with this ultra-subtle body forms the resolve, ‘May I again possess a world-body constituted of all sentient and non-sentient beings, distinguishes by names and forms just as in the previous action;’ and modifies (parinamayati) itself by gradually evolving the world-body in the inverse order in which reabsorption had taken place.” (Ramanujacharya, op. cit. p. 403)) यह परिणमनेवाला ब्रह्मा या ईश्वरकी संकल्पनाका श्री स्वामिनारायणके मतमें स्पष्ट रूपसे निषेध किया गया है, यह कह के कि, ब्रह्मा कि जो अचल और अविभाज्य है, उसे परिवर्तनशील मानना अतार्किक है। (याज्ञिक जे.ए., प्र. ६, सेक्शन ५)

यह सच है कि रामानुजाचार्य मानते हैं कि ईश्वरसे अभेदवाले ब्रह्मांडमें होनेवाले परिवर्तनके बावजूद ईश्वरका जो मूल स्वरूप है वह परिवर्तनहीन और अप्रभावित ही रहता है। उन्होंने कहा है कि, “जब परब्रह्मा चित् और अचित्के समुच्चयवाले जगतरूप होते हैं तब अपूर्णता और दुःखके रूप शरीरका चित् भाग होता है और बाकीका परिवर्तन उनका अचित् रूप शरीरका दुसरा भाग होता है।” (“while the highest self thus undergoes a change – in the form of a world comprising the whole aggregate of sentient and non-



sentient beings – all imperfection and suffering are limited to the sentient beings constituting part of its body, and all change is restricted to the non-sentient things which constitute another part.” (Ramanujacharya, op. cit. pp. 405-6))

इसी बातको रूपकात्मक दृष्टिसे समजाते हुए रामानुजाचार्य कहते हैं कि, “शरीरसे संलग्न अपूर्णताएँ कभी ब्रह्मा पर असरकर्ता नहीं होती हैं, जैसे व्यक्तिके कुछ अच्छे गुण उनके शरीरको बढ़ाता नहीं है और बाल, युवा या वृद्धावस्थाकी आत्मा पर कोई असर नहीं होती, उसी तरह सभी प्रकारके परिवर्तन मात्र शरीरके हैं, शरीरके नहीं, वैसे ही ज्ञान, आनन्द इत्यादि जीवात्माके गुण हैं, शरीरके नहीं।” (“The imperfections adhering to the body do not affect Brahman, and the good qualities belonging to the self do not extend to the body; in the same way as youth, childhood and old age, which are attributed of embodied beings such as Gods or men, belong to the body only, not to embodied self, while knowledge, pleasure and so on belonging to the conscious Self only, not to the body.” (Ibid., p. 422)) इसके संदर्भमें यह स्पष्ट होता है कि यह रूपकसे तो शरीर और शरीरी आत्माका भेद ही स्पष्ट होता है। शरीरकी अपूर्णता और परिवर्तन शरीरी आत्माको स्पर्श नहीं करते हैं क्योंकि शरीरी आत्मा शरीरसे संपूर्णतया भिन्न और अलग है। परंतु, रामानुजाचार्य ईश्वर और उनके शरीरके बिचमें अभिन्न और बिन-अलग (अपृथक्सिद्धि) मानते हैं, जो योग्य तरीकेसे उनके प्रयोजनको सिद्ध नहीं कर सकता है, बल्कि उनके प्रयोजनके विरुद्ध जाता है। इसतरह, रामानुजाचार्यका अचल और पूर्ण ईश्वरके प्रति प्रेम होनेके बावजूद यह मानना अतार्किक है कि जगतकी वास्तविक अपूर्णता और वास्तविक परिवर्तनकी मददसे जो पूर्ण और परिवर्तनहीन तत्त्व हैं उसका शरीर बनता है।

(५) जगत ईश्वरका बंधारणीय घटक है, तो ब्रह्मा या ईश्वरके प्रयोजनको यह जगतके प्रयोजनसे जरूर कोई संबंध होना चाहिए। इस संदर्भमें रामानुजाचार्य और श्री स्वामिनारायणके मतका पांचवाँ भेद बनता है। रामानुजाचार्यके मतमें, “पस्त्रहाकी ईच्छामात्रसे ही जगतका सर्जन, पालन और संहार होता है वह घटना ईश्वरके लिए लीलामात्र है।” (“The motive which prompts Brahman – all whose wishes are fulfilled and who is perfect in himself – to the creation of a world comprising all kinds of sentient and non-sentient beings, ruling this earth with its seven dvipas, and possessing perfect strength, valour, and so on, has a game at balls, or the like from no other motive than to amuse himself; hence there is no objection to the view that sport only is the motive prompting Brahman to the creation, sustentation, destruction of this world which is easily fashioned by his mere will.” (Ibid. p.477))

यह मत, सामान्यतः सभी भारतीय ईश्वरवादी स्वीकार करते हैं, परंतु, श्री स्वामिनारायणको यह स्वीकार नहीं है। (याज्ञिक जे.ए., प्र. १३, सेक्शन ५) श्री स्वामिनारायणके मतमें जगतके संदर्भमें यही सच है कि जीवोंके ध्येयको सिद्ध करवानेका ईश्वरका प्रयोजन है। उनके मतमें जगत किसीभी तरह ईश्वरके खेलनेका मैदान नहीं है, बल्कि एक ऐसा क्षेत्र है जहां जीवोंको जगतका अनुभव होता है और मुक्तिके लिए यहां प्रयत्न कर सकते हैं। इस संदर्भमें डॉ. याज्ञिकने यथार्थ कहा है कि, “The admission that ‘sport only is the motive’ of God’s activity not only goes against the real value of the finite self, but also leaves room neither for the purely redemptive activities of God nor for the really teleological explanation of the universe. (Yajnik, J.A., p.128)

(६) रामानुजाचार्य और श्री स्वामिनारायणके सिद्धांतमें एक और महत्वका भेद है। रामानुजाचार्य धर्मभूतज्ञानको आत्माके अतिरिक्त स्वतंत्र सत्ता देते हैं, जबकि, श्री स्वामिनारायण ऐसे स्वतंत्र ज्ञानका स्वीकार नहीं करते हैं। रामानुजाचार्यके मतमें दो प्रकारके ज्ञान है, एक आत्माका स्वरूप रूप ज्ञान और दूसरा, धर्मभूतज्ञान, जिसका आत्माके सांसारिक जीवनमें संकोच होता है और आत्माकी मोक्षावस्थामें उसका व्यापकत्व होता है, जिससे आत्मा ईश्वरकी तरह सर्वज्ञता प्राप्त कर सकता है। प्रो. हिरियणा कहते हैं कि दो प्रकारके ज्ञानका गृहित मानना तार्किक दृष्टिसे मुश्किल है। (“It is difficult to see the reason for postulating two kinds of jnana.” (Hiriyanna, p.389) रामानुजाचार्यकी यह दो प्रकारके ज्ञानकी धारणाके संदर्भमें डॉ. आर.जी. नौलखाने आपत्ति बताई है। उन्होंने कहा है कि, “या तो धर्मभूतज्ञान जैसी कोई स्वतंत्र सत्ताकी धारणा न की जाए, या फिर, वैसी धारणा करते हैं तो आप्ठिक जीवात्माके पास विभू, सर्वव्यापक ज्ञान मानना सुसंगत नहीं है। उपरान्त, उसका बद्ध जीवमें संकोच और मुक्त जीवमें व्यापकत्व मानना बुद्धिगम्य नहीं है, क्योंकि, यदि यह एक ही ज्ञान है तो उसी एक ज्ञानका संकोच-विस्तार और व्यापकत्वका तारतम्य नहीं होता है। संकोच-विस्तारको यदि भ्रम या आभास ही माना जाए तो ठीक बात है, परंतु, रामानुज या उनके अनुयायीओंको यह मान्य नहीं है। और यदि अनेक आत्माओंका अनेक धर्मभूतज्ञान माना जाए तो अनेक सर्वव्यापक तत्वों कैसे हो सकते हैं ?” (“If the expansion and contraction of one’s knowledge and sentiency can be explained through the more or less sattvika nature of one’s mind, where lies the necessity of multiplying entities ? Either there is no need of postulating an entity like dharmabhutajnana, or, if it is postulated, there seems to be no sound reason to subordinate it, capable as it is of becoming all-pervasive, to an atomic soul, which is destined ever to remain atomic only. Moreover, the assertion of its contraction and expansion for the souls in bondage along with its all-pervasiveness in the case of liberated souls is also beyond our comprehension. If it is one and the same jnana, how can its all-pervasiveness and contraction and expansion be reconciled to each other, unless the contraction and expansion be held to be apparent only; but this is what Ramanuja and his followers would not admit. And if it be said that there are as many



dharmabhutajnanas as there are souls, it becomes unintelligible how a plurality of all-pervading things of exactly the same nature is possible.” (R.G.Naulakha, p.317))

इसतरह, यह दो प्रकारके ज्ञानकी संकल्पनामें तास्तम्यका अभाव है। श्री स्वामिनारायणके मतमें यह दो प्रकारके ज्ञान नहीं है। उनके मतमें ज्ञान या चैतन्य आध्यात्मिक तत्त्वों (आत्मा)का मूलभूत गुण या स्वरूप है। कोई एक विशिष्ट आध्यात्मिक तत्त्वके ज्ञानका संकोच और विस्तार, सांसारिक जीवनमें उपयुक्त जिस माध्यमसे ज्ञान प्राप्त होता है उस पर निर्भर करता है। जैसे ही आत्मा मनो-शारीरिक मार्यादाओंसे पर उठता है, वह स्वाभाविक रूपसे कुछभी जाननेकी क्षमता प्राप्त करता है। इसलिए, श्री स्वामिनारायणको धर्मभूतज्ञान जैसी स्वतंत्र सत्ताको मानना जरूरी नहीं लगा। डॉ. नवलखाकी समीक्षा देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि इस संदर्भमें रामानुजाचार्यसे श्री स्वामिनारायणका मंतव्य ज्यादा मजबूत है।

(७) श्री स्वामिनारायणके भ्रमका सिद्धांत प्राभाकर मीमांसासे ज्यादा करीब है। श्री स्वामिनारायण अख्यातिवादमें मानते हैं, जबकि, रामानुजाचार्य सत्ख्यातिवादमें मानते हैं। श्री स्वामिनारायण और रामानुजाचार्य दोनों ज्ञानमीमांसकीय वास्तववादका स्वीकार करते हैं और इसलिए दोनों इस बातसे सम्मत हैं कि परम या आखिरी भ्रम संभव नहीं है। परंतु, श्री स्वामिनारायणका मत यह है कि आखिर भ्रम जैसी कोई चीज नहीं है, का मतलब यह नहीं है कि प्रत्येक वस्तुमें अन्य वस्तु, अमुक हद तक विद्यमान है। दो चीजोंके बीचकी साम्यताका निषेध नहीं हो सकता, परंतु, इसका मतलब यह नहीं है कि वो परस्परमें विद्यमान है। उदाहरणके तौर पे, जैसे रजत कुछ बातमें सीपसे साम्यता रखता है, परंतु, रामानुजाचार्यकी तरह यह कहना उचित नहीं है कि सीपमें रजत कुछ अंशमें विद्यमान है। डॉ. सिन्हाने सही कहा है कि, “Similarity means similarity in qualities. It does not necessarily mean partial co-existence of two things in each other.” (J.N.Sinha, p. 304)

(८) यह सर्वविदित है कि वेदान्तकी सभी शाखाएँ अनन्त ब्रह्म और जीवके संबंधको भेद और अभेदकी परिभाषामें स्पष्ट करनेका प्रयत्न करती हैं। रामानुजाचार्यने अनन्त ब्रह्म और जीवके बीचमें तादात्म्य, भेद और भेदमें तादात्म्य ये तीनों संबंध माने हैं। (“किमत्र तत्त्वमं भेदोभेद उभयात्मकं वा सर्वं तत्त्वम् ।” – सर्वदर्शनसंग्रह, ४.१६) परंतु, सर्वदर्शनसंग्रहके कर्ताने बताया कि रामानुजाचार्य एकसाथ दो विपरित मतोंको मानते हैं। (“परस्पर विरुद्ध भेदादि पक्षत्रय...” सर्वदर्शनसंग्रह, ५.१) रामानुजाचार्यके चिंतनमें यह तार्किक विसंगतिका कारण यह है कि उनको एक तरफसे आत्माको अंतिम तत्त्वमें संपूर्ण विलिन होने देना नहीं था और दूसरी ओर, ऐसे किसी भी तत्त्वको स्वीकारना नहीं चाहते थे जो ब्रह्मके भागरूप न हो। ये दो ध्येयों मानसिक दृष्टिसे आकर्षक होनेके बावजूद तार्किक दृष्टिसे सुसंगत नहीं है।

श्री स्वामिनारायण ये तार्किक व्याघातमें नहीं फसे, क्योंकि श्री स्वामिनारायण अनन्त ब्रह्म और जीवके बीचमें सिर्फ भेदके संबंधको ही स्वीकार करते हैं। रामानुजाचार्यसे विपरित, श्री स्वामिनारायणके ब्रह्मको अपने प्रयोजनकी सिद्धिके लिए शरीरके रूपमें पदार्थ और जीवोंकी आवश्यकता नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि श्री स्वामिनारायण तत्त्वमीमांसकीय द्वैतवादमें मानते हैं। उनके मतमें, परब्रह्मकी अन्तर्यामी शक्तिकी वजहसे ही जो कुछ भी है, उसका अस्तित्व और प्रवृत्ति संभव है।

यह भी कह सकते हैं कि रामानुजाचार्य और श्री स्वामिनारायण दोनों ही एक ओर अनेक, दोनोंमें से किसीको भी छोड़ना नहीं चाहते हैं। जब रामानुजाचार्यने अनेकको एकके शरीरके रूपमें माना, तब श्री स्वामिनारायणने अनेकको एकके उपर तात्त्विक दृष्टिसे निर्भर माना है। जब एक अनेकसे क्वलिफाईड होता है, तब एक अपनी प्रभुता और स्वतंत्रता खो बैठता है, वैसे ही अनेक जब एकका सिर्फ भाग बनकर रहता है, तब उसकी कोई मूल्यवान सत्ता नहीं होती है। इसके विरुद्धमें, जब अनेक एकसे क्वलिफाईड होता है, तो एककी प्रभुता और स्वतंत्रता तथा अनेककी तात्त्विक सत्ता, दोनों संभव होता है, क्योंकि इसमें अनेक एकके उपर निर्भर होनेके बावजूद एकसे अलग, स्वतंत्र रहता है। इस तरह, श्री स्वामिनारायणका एक और अनेकका सिद्धांत तार्किक दृष्टिसे ज्यादा स्वीकृत बनता है।

श्री स्वामिनारायणका सिद्धांत - अमूर्त एकतत्त्ववाद और विशिष्ट बहुतत्त्ववाद

श्री स्वामिनारायण और रामानुजाचार्यके सिद्धांतोंकी तुलनाके यह अंतिम मुद्देसे स्पष्ट होता है कि श्री स्वामिनारायण एकतत्त्ववाद और बहुतत्त्ववाद दोनोंको साथ रखते हैं। वो जगतकी वास्तविकताको स्वीकार करते हैं, इसलिए वो बहुतत्त्ववादी हैं। परंतु, साथ ही साथ, मानते हैं कि यह जगतमें जो कुछ भी है उन सबको साथ होनेके लिए कोई एक तत्त्व होना जरूरी है। श्री स्वामिनारायणके मतमें सिर्फ अमूर्त तत्त्व अकेला, या तो जगतकी भिन्नताओंका सिर्फ समूह हमें एकत्वके बारेमें तात्त्विक संतोष प्रदान नहीं कर सकता। वह एक तत्त्व वह है जो न सिर्फ सबका संकलन करता है, परंतु, सबका आधार भी है।



यह एक तत्त्व, जो सबका संकलन करता है, उसको माननेके लिए जेम्स वार्ड कहते हैं कि, “या तो सभी विविधता परस्पर संयोजित है या फिर ये सब किसी एकसे संयोजित है। या तो कोई सार्वत्रिक सिद्धांत सबको संयोजित रखता हो या कोई परात्पर सत्ता हो जिससे सब कुछ संबंधित हो। इसमें दुसरा विकल्प स्वीकारा जाए तो उसीसे पहला विकल्प फलित होता है। क्योंकि, एक परात्पर सत्तासे संबंधित होने से, चाहे परोक्षरूपसे ही सही, परंतु, सभी परस्पर भी संयोजित हो सकते हैं।” (“Either each must be connected with all, in at least one way, or that all must be connected with someone. There must be a universal principle directly relating all; or a Supreme Individual to whom all are related. The latter would imply the former in so far as through their common relation to the Supreme One, all would be related, though only indirectly, to each other.” (James Ward, p.42)) श्री स्वामिनारायणने इनमेंसे दूसरा विकल्प माना है, और इसलिए पहला उसके फलितार्थसे ही स्वीकार हो जाता है। इस तरह, श्री स्वामिनारायणके मतमें जगतमें जो कुछभी है, वह एकमात्र परब्रह्माके अधीन है। परब्रह्मा उनकी अन्तर्यामी शक्तिसे इसको संभालते हैं। परब्रह्माकी अन्तर्यामी शक्तिके अधीन सबकुछ होनेसे, सबकुछ भी परस्पर संबंधित हैं। उपरान्त, हेतुलक्षी एकता भी हाजिर है, जो नैतिक गवर्नन्ससे शक्य बनता है, जिस पर अंतिम एक तत्त्वका नियंत्रण है। इस तरह, जेम्स वाल्डकी तरह, श्री स्वामिनारायणके परब्रह्माकी संकल्पनासे सत्तालक्षी और हेतुलक्षी एकता स्थापित होती है। (इबिड, पृ.४४२) सोर्लिके शब्दोंमें, “There is nothing outside such a God in the sense of being fully independent of His being or will.” (W.R.Sorley, p.493) इस तरह वह अन्तिम तत्त्व जगतके तत्त्वोंसे जूड़े बिनाही जगतके तत्त्वोंकी एकता कर सकता है। यह परब्रह्माके अधीन जीव और जगत होनेके बावजूद, उस तत्त्वकी परात्परता बनी रहती है। इस तरह, स्पष्ट होता है कि श्री स्वामिनारायण अमूर्त एकतत्त्ववाद और विशिष्ट बहुतत्त्ववाद, दोनोंमें जो तथ्य-सत्य हैं उनका स्वीकार करके, दोनों पराकाष्ठाओंके भेदको व्यवस्थित रूपसे मिटा देते हैं। श्री स्वामिनारायण आत्माकी और भौतिक वस्तुओंकी अनेकताको स्वीकार करते हैं, बौद्धान्के जिसे “individuality and value” कहते हैं उसे बखूबी माना है और इसको मानने से एकतत्त्ववादकी आपत्तियोंसे वो बच जाते हैं। श्री स्वामिनारायणके मतमें ईश्वर, जैसे जेम्स वार्डने कहा है, “a living God with a living world, not a potter God with a world of illusory clay, not an inconceivable abstraction that is only infinite and absolute because it is beyond everything and means nothing.” (James Ward, op. cit., p. 444) उपरान्त, श्री स्वामिनारायणने माना है कि अक्षरब्रह्मा, ईश्वर, जीव और माया चारों परब्रह्मासे अतिरिक्त तात्त्विक सत्तावाले हैं, परंतु, वो परब्रह्माके विरुद्ध नहीं है, क्योंकि वो सब परब्रह्माके अधीन है। इस तरह, विशिष्ट बहुतत्त्ववाद जो परस्पर संबंध या प्रतिक्रियाका योग्य रूपसे खुलासा नहीं कर सकता, पर श्री स्वामिनारायणके मतानुसार मानें कि यह जो विविधता है, अनेकता है वह एक परब्रह्मासे ही संभव है, तब वह बहुत्वके परस्परकी प्रतिक्रियाओंका खुलासा हो सकता है। इस तरह, श्री स्वामिनारायणके मतमें, परब्रह्मा ही एक तात्त्विक अन्तिम सत्ता है जो *causa sui* है और जीव, माया इत्यादि उन सत्तासे ही विद्यमान है, इसलिए वो सभी द्वितीय श्रेणीकी सत्ता है। इस तरह, डॉ. याज्ञिक श्री स्वामिनारायणके सिद्धांतको बताते हुए यथार्थ कहते हैं कि, “There is a fundamental unity in the universe, in spite of the presence of the real multiplicity in its structure.” (Yajnik J.A., op.cit., p.132)

श्री स्वामिनारायणकी ईश्वरविद्याको Penentheism कह सकते हैं :

श्री स्वामिनारायणकी तात्त्विक मान्यता होते हुए भी यह वास्तविकता है कि उन्होंने धार्मिक संप्रदायकी स्थापना की है। इसलिए पाश्चात्य ईश्वरवादी सिद्धांत, जैसे डीइड्लम, पैन्थीइड्लम और थीइड्लम आदि सिद्धांतोंसे श्री स्वामिनारायणके धर्मके तत्त्वज्ञानकी तुलना करना उचित होगा।

श्री स्वामिनारायण डीइड्लमके यह मतसे सहमत हैं जो मानता है कि ईश्वर पवित्र, पूर्ण, सगुण और परात्पर है। परंतु, डीइड्लम से यह मुद्दे पर अलग है कि श्री स्वामिनारायणके मतमें जगत परब्रह्मासे संपूर्ण अधीन है। इस तरह, ईश्वरकी सर्वव्यापकता, जो डीइड्लममें गैरहाजिर है, उनका श्री स्वामिनारायणके सिद्धांतमें महत्वका स्थान है।

श्री स्वामिनारायण पैन्थीइड्लमकी तरह, ईश्वरके सर्वव्यापकत्वको स्वीकारते होनेके बावजूद पैन्थीइड्लमसे भी अलग चिंतन रखते हैं। (याज्ञिक जे.ए., प्र. ६, सेक्शन ६) पैन्थीइड्लमकी ब्रह्मांडकी एकता और दिव्यताकी संकल्पना श्री स्वामिनारायणको स्वीकार है, परंतु, जगतके अनुभवसे आती विविधता और भेदको वो नजर अंदाज नहीं करते हैं। पैन्थीइड्लमका ईश्वर तमाम वस्तुओंका समुच्चय मात्र है, जगत उनका बंधारणीय तत्त्व है, इसलिए वह उनसे परात्पर नहीं हो सकते हैं। इनसे विरुद्ध, श्री स्वामिनारायणका ईश्वर जगतमें संपूर्ण व्याप्त भी है और उससे परात्पर भी है, क्योंकि जगत परब्रह्माका बंधारणीय तत्त्व (शरीर)नहीं है।



पैनथीइझम सिद्धांत धर्मके तत्त्वज्ञानकी संकल्पना है और स्पिनोझा जैसे पैनथीइस्टीकको “ईश्वरोन्मत्त मानवी” कहा जाता है, फिर भी पैनथीइझमके आधारविधानों परसे जो फलित होता है उससे धर्म और नैतिकताकी प्रवृत्ति और बौद्धिक स्वीकृति असंव होती है। पी.एन.श्रीनिवासआचारिने यथार्थ ही कहा है कि, “Its fatal defect is the denial of the evilness of evil and the reality of the moral consciousness. The all-God theory destroys God and the self that seeks God, and gives man a logical and moral holiday.” (P.N.Shrinivasachari, op.cit., p.77-78)

श्री स्वामिनारायण “सब कुछ ईश्वर है।” इस पैनथीइझमकी गलतीको सुधारके थीइझमके साथ यह मानते हैं कि “सब कुछ ईश्वरके अधीन है।” उपरांत, डीइझम और पैनथीइझमके एकांगी दृष्टिके छोड़के थीइझमके साथ श्री स्वामिनारायण ईश्वरके सर्वव्यापकत्व और परत्व दोनोंका महत्व स्वीकारते हैं। श्री स्वामिनारायण थीइझमके साथ सगुण ईश्वरको भी मानते हैं। इस तरह, श्री स्वामिनारायण थीइझमके साथ यह स्पष्टरूपसे मानते हैं कि ईश्वर जगतसे अलग होनेके बावजूद वो जगतमें व्याप्त हैं और जगतसे प्रेमपूर्ण संबंध भी रखते हैं।

श्री स्वामिनारायणके ईश्वरवादी सिद्धांत और थीइझममें इतनी साम्यता होनेके बावजूद श्री स्वामिनारायण थीइझमसे भी अलग मान्यता रखते हैं। श्री स्वामिनारायणके मतमें जगतका थीइझमकी तरह नया ही सर्जन हुआ नहीं है परंतु जगत अनादि है। दुसरा, श्री स्वामिनारायण कीसी भी तरह जगतके उपर ईश्वर अधीन है, ऐसा नहीं स्वीकारते हैं। थीइझमके सिद्धांतमें ईश्वरको स्वतंत्र संकल्पशक्तिवाले जीवोंके उपर अधीन होना पडता है। श्री स्वामिनारायणके मतसे इस मान्यताको मानना ईश्वरमें मर्यादा मानना हुआ। श्री स्वामिनारायण जीवोंके संकल्प-स्वातंत्र्यको इस तरह मानते हैं कि जिसमें ईश्वरकी सामर्थ्य और स्वतंत्रता यथावत् रहते हैं। इसलिए डॉ. यज्ञिक कहते हैं कि, The “Svaminarayanism has, therefore, to say against Theism that the limited or finite God is no God deserving to be either the guide or the goal of man’s ethical and spiritual endeavours.” (Yajnik J.A., op.cit., p.134)

यहां स्पष्ट होता है कि श्री स्वामिनारायणके सिद्धांतमें डीइझम, पैनथीइझम और थीइझमकी वैचारिक मर्यादाओंका त्याग करके, वही सिद्धांतोंमें रहे सत्यार्थको ग्रहण कीया गया है। इस तरह, श्री स्वामिनारायणके सिद्धांतमें तमाम पाश्चात्य ईश्वरवादी सिद्धांतोंका तर्कसंगत समुच्चय किया गया है। इसलिए, श्री स्वामिनारायणके सिद्धांतको हम डीइस्टीक, पैनथीइस्टीक या थीइस्टीक नहीं कह सकते, बल्कि, उसे पैन-एन-थीइस्टीक कह सकते हैं। वॉजिलियस फर्मने पैन-एन-थीइझमको इस तरह व्याख्यायित किया है, जो श्री स्वामिनारायणके सैद्धांतिक स्थितिको हूबहू व्यक्त करते हैं :

“पैन – सर्व, एन – में और थीओस – ईश्वर. यह पदका अर्थ है कि ईश्वर (परब्रह्मा) जगतकी तमाम वस्तुओंका सापेक्ष स्वतंत्र अस्तित्व मानते हुए भी सर्वमें व्याप्त है। उपरांत, यहां ईश्वरको सर्वव्याप्त कहनेके समय ये व्यापकत्व ही अंतिम नहीं है (जैसे पैनएनथीइझममें अंतिम माना है), ईश्वर मात्र जगतसे कुछ विशेष है। वह उस अर्थमें परात्पर है कि सर्जनात्मक सभी पदार्थ सर्जनहार पर अवलंबन रखते हैं, पर सर्जनहार सर्जनके उपर अवलंबित नहीं है। इस तरह, ईश्वर सबसे उच्च प्रकारकी एकताको धारण करते हैं, विविधतामें एकता। इसतरह, यह पद (पैन-एन-थीइझम) जगतमें व्याप्त ईश्वर माननेकी पैनथीइझमकी संकल्पना और परात्पर माननेकी थीइझमकी संकल्पनाका सुभग समन्वय है।”

(“Penentheism: (Gr. Pan=all; en=in; theos=God) : The term for the view that God interpenetrates everything without cancelling the relative independent existence of the world of entities; moreover, while God is immanent, this immanence is not absolute (as in pentheism); God is more than the world, transcendent in the sense that though the created is dependent upon the Creator, the Creator is not dependent upon the created. God thus, is held to be the highest type of Unity, viz. Unity in Multiplicity. The term is employed to cover a mediating position between pantheism with its extreme immanence and theism of the type which tends to extreme transcendence.” (V.F., p.223) (Yajnik J.A., op.cit., p.134)

REFERENCES

1. Hiriyanna, Outlines of Indian Philosophy (1956)
2. J.N.Sinha, Indian Philosophy : Perception (1934)
3. James Ward, The Realm of Ends (1911)
4. Ninian Smart, Doctrine and Argument in Indian Philosophy (1964)
5. Prof. P.N.Shrinivasachari, The Philosophy of Vishistadvaita, The Adyar Library, Adyar.
6. R.G.Naulakha, Shankara’s Brahmapada (1964)



7. Ramanujacharya's Geeta Bhashya (Govindacharys's Translation) (1960)
8. Runes and Others, Dictionary of Philosophy (1942)
9. S. Dasgupta, History of Indian Philosophy, Vol. II (1953)
10. S. Radhakrishnan, Indian Philosophy, Vol. 2
11. Sri Bhashya: Ramanuja's commentary on Vedanta Sutras, translated By George Thibaut (1904)
12. W.R.Sorley, Moral Values and the Idea of God (1918)
13. Yajnik, J.A., The Philosophy of Sri Svaminarayanism (1972)

